काव्य-पुरुष

काव्योत्पत्ति पर काल्पनिक काव्य

लेखक

आचार्य-प्रवर श्री रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल'

एम० ए०, डी० लिट्

संपादक

श्री० रमेशचन्द्र शुक्ल एम० ए०

श्री उमाशंकर शुक्ल

प्रकाशक

अग्रवाल प्रेस, प्रयाग

प्रथमावृत्ति १९५५ मूल्य ७)

स्नेह-समर्पण

—:०:—

श्री मत्पंडित कुञ्जविहारी लाल शुक्ल-वर, !
विद्वद्वर्य-प्रशस्त पूज्य पद-पद्म शुक्ल वर।
आत्मज अपना जान, मानकर दास अकिंचन,
कृपा-वारि से किया बड़ा जिसका कर सिंचन॥

× × × ×

उस "रसाल" का सुफल काव्य स्वीकार कीजिये।
शुभाशीष सस्नेह मोद मन मान दीजिये।
रहे काव्य-प्रिय आप, इसीसे है यह अर्पित,
इसी काव्य-रस से सभक्ति करता संतर्पित॥

× × × ×

पूज्य पिता जी! कीजिये, तुच्छ प्रणति स्वीकार,
उस 'रसाल' की भेंट यह, जिसे किया नित प्यार।

—:०:—

वक्तव्य

एक दिवस प्रयाग-विश्व-विद्यालय में हिन्दी की एम० ए० कक्षा को जब मैं काव्य के उद्भव और विकास पर व्याख्यान दे रहा था, मेरे मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह विषय यदि एक काव्य के रूप मे प्रस्तुत किया जाय तो कदाचित अच्छा हो सकेगा।

काव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक छोटा सा प्राचीन कथानक है। काव्य की विवेचना करते हुए प्रायः सभी प्राचीन आचार्यों ने रूपकालङ्कार का आधार लेकर काव्य को एक शरीरी के रूप मे रक्खा है। भाषा को काव्य का कलेवर मानकर उसके प्राणों की गवेषणा की है, जिसके फल-स्वरूप अलङ्कार, वक्रोक्ति, रीति, ध्वनि, रस आदि के सम्प्रदाय प्रचलित हुए, अन्त मे लगभग सभी सम्प्रदायों का ऐक्य हुआ। हाँ, रूपक बराबर वही चलता रहा और काव्य में रस, रीति, ध्वनि आदि सब का समन्वय कर दिया गया।

संस्कृत के काव्य-क्षेत्र में एक परम्परा ऐसी थी जिसके आधार पर पंडित-कवियों ने काव्य के साथ व्याकरण जैसे अन्य विषयों का भी अध्ययन कराया है। भट्टि-काव्य जैसे ग्रन्थ इसके उदाहारण है, ऐसे काव्यों मे एक ओर तो काव्य रहता है और दूसरी ओर किसी विषय-विशेष का विवेचन इस ढंग से किया जाता है कि काव्या-नन्द-रस से विषय-विवेचन मे शुष्कता अथवा नीरसता किसी भी प्रकार न आ सके। साथ ही काव्य का रस-प्रवाह में भी ग्रहीत विषय के विवेचन से किसी प्रकार की वाधा न उपस्थित हो सके।

हिन्दी-काव्य-क्षेत्र मे भी इसका आंशिक रूप रामचरित मानस जैसे कुछ ही काव्यों मे प्राप्त होता है, किन्तु पूर्ण रूप में कहीं नहीं। तुलसीदासजी ने मानस में यथास्थान भक्ति, वैराग्य और आध्यात्मिक ज्ञान का संक्षिप्त किन्तु मार्मिक-विवेचन किया है, तथापि विषय-निरूपण के रूप में नहीं। मेरे चित्त मे इस कमी का विचार भी उत्पन्न हुआ और मैं इस विचार के आधार पर कल्पना कर चला। काव्योत्पत्ति का एक स्थूल-चित्र मैंने बना डाला, यही इस काव्य की रचना का कारण कहा जा सकता है।

बसन्त-पंचमी का दिवस था, विश्व-विद्यालय में छुट्टी भी थी। नैत्तिक नियमानुसार पूजनोपरान्त सहसा ही कुछ छन्द मंगलाचरण के रूप में बन गये और हृदय में यह उत्साह हुआ कि आज के शुभ-दिवस से इस काव्य का

प्रारम्भ कर दिया जाय। जो छन्द उस समय बने उनमें अद्वैतवाद का प्रतिबिम्ब था। प्रायः मङ्गलाचरण मे अद्वैतवाद के आधार पर ईश-स्मरण नहीं किया गया। तभी यह विचार भी आगे आया कि इसके मंगलाचरण में कुछ विशेषता होनी चाहिए। इस लिये काव्य के शोभाकारक आलंकारों के नामों को घटित करते हुए कई छन्द बन गये और इस प्रकार मंगलाचरण का भाग कुछ अधिक हो गया।

मेरे एक अभिन्न मित्र ने अकस्मात ही इसे सुनकर एक नया सुझाव मेरे सन्मुख रखा और यह कहा। इस काव्य मे ब्रज भाषा काव्य के समान अलङ्कार चमत्कार अवश्य होना चाहिए, विशेषतया शब्दालङ्कार तो अवश्य ही रहे। उनका यह सुझाव मुझे सुन्दर और समीचीन प्रतीत हुआ और मैंने कुछ थोड़ा सा विचार इस सुझाव के चरितार्थ करने में रक्खा।

खड़ी बोली में अलङ्कार-चमत्कार आ सकता है और अच्छे रूप में यदि सुकवि-जन तनिक इसका विचार रक्खे, हाँ खड़ी बोली की अपेक्षा ब्रजभाषा में अलंकार-चमत्कार और रचना-कला-कौशल अधिक आ सकता है और संस्कृत मे तो और भी अधिक। फिर भी थोड़ा प्रयास इसके लिए यहाँ इस काव्य में किया गया है।

एक बात कहने की यह है कि जहाँ किसी देवता का कोई विशेष-कथन है, वहाँ सरल-देव-वाणी संस्कृत का प्रयोग किया गया है, चूँ कि संस्कृत को देव-वाणी कहा जाता है। सामान्य वार्तालाप और कथा-कथन में खड़ी बोली का प्रयोग तो है ही, सारा काव्य ही खड़ी बोली में है। कहीं कहीं कूट-शैली की भी झीनी-सी झलक रक्खी गई है, केवल यह देखने के लिए कि खड़ी बोली में कहाँ तक इसका उपयोग हो सकता है।

मुझे इस काव्य के सम्बन्ध में मुख्य रूप से बस इतना ही यहाँ कहना है इससे अधिक कहने का मुझे अधिकार भी नहीं है।

मेरे अनुमान से कुछ अधिक समय इस काव्य में इस लिए लगा कि मुझे प्रयाग को छोड़ कर यहाँ आना पड़ा और यहाँ कार्याधिक्य ऐसा हुआ कि इसके लिए मुझे अवकाश बहुत कम मिल सका। यह अभी पूर्वार्ध ही है। किन्तु ऐसा पूर्वार्ध है जो अपने में आप पूर्ण सा है। आज यही सहृदय-पाठकों के सम्मुख है। मेरे कई मित्रों की अनुमति है और प्रकाशक के द्वारा भी यही

कहा गया है कि दोनों भाग मिलकर कलेवर को अत्यधिक कर देंगे, इसी लिए केवल यह काव्य, काव्योत्पत्ति के प्रसंग तक यहाँ रक्खा गया है । उत्तरार्ध शीघ्र ही उपस्थित होगा ।

विद्वज्जन-कृपाकांक्षी

विजया दशमी
सम्बत् २०११

रामशङ्कर शुक्ल "रसाल"
सागर-विश्व-विद्यालय

मंगलाचरण

—१—

जयति जयति आद्यन्तहीन अच्युत अविकारी,
जय जय जय अखिलेश अनामय सत्याकारी।
जय जय ज्ञानानन्द मूर्ति सत्प्रेम-पूर्ति जय,
जय विजय-श्री युक्त, मुक्त, मुद-मंगलमय जय ॥

—२—

मानव-मन जिसको मदान्ध हो नास्ति बताता,
उसी नास्ति में किन्तु अस्ति का आशय पाता।
पाकर जिसकी दिव्य दमक नक्षत्र दमकते,
हीरक से तारे जिसकी पा चमक चमकते ॥

—३—

एक अनेक, अनेक एक चरितार्थ जहाँ हो,
ध्येय वही, अद्वैत सर्वथा सार्थ जहाँ हो।
साधक, साधन, साध्य, साधना स्वयं सिद्धि है,
है स्वयमेव समृद्धि-सिद्धि भी, संप्रसिद्धि है।

—४—

विटप-विटप, शाखा-शाखा, फिर पत्ता-पत्ता,
विहग-बदन से कहता जिसकी महा महत्ता।
सुमन-सुमन, बल्लरी-बल्लरी डाली-डाली,
मधुप-मुखों से कहती 'जय जय वन-माली' ॥

—५—

निज में निज प्रतिविम्ब-साथ जो खेला करता,
कौतुक जग में नित्य नवीन अकेला करता।
है जो सृष्टा आप और आप ही सृष्टि है,
अपना दृष्टा आप, आपही दृश्य, दृष्टि है ॥

—६—

रम्य, रमण हो आप, आप में आप रमा है,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गिरा है, उमा, रमा है।
आप नटी, नट आप, आप ही रंगमंच है,
सूत्रधार है स्वयं, स्वयं नाटक-प्रपंच है ॥

—७—

होकर जो आधेय आप, आधार आप है,
है जिसमे संसार वही संसार आप है।
है जो पूर्ण प्रकाश-पुंज, जो अंधकार है,
उसी विचित्र विरोध मूर्ति को नमस्कार है ॥

—८—

वाणी-विद्या-बुद्धि-प्रगति अंतिम विराम जो,
शक्ति-शील-सौंदर्य-धाम, श्लोकाभिराम जो।
संज्ञा, संज्ञी तथा वाच्य भी वाचक भी है,
याचनीय, याचना, याच्य भी याचक भी है ॥

—९—

है शरण्य, शरणागत, अशरण-शरण वही है,
मंगलमय इति शुभम्, मंगलाचरण वही है।
कर्ता वही स्वतंत्र, कर्म भी करण वही, है,
सम्बन्धी-सम्बन्धवान, अधिकरण वही है ॥

—१०—

दाता, देय, सुदान-पात्र वह सम्प्रदान है,
साथ भक्तिकृत, पद-विभक्तिकृत अपादान है।
सार्थ सहित सम्बन्ध सिद्ध संवोधन कारक,
बोध्य विवुध, वोधित, बोधक संवोधन कारक ॥

—११—

है वह संज्ञावान किन्तु संज्ञा-विहीन है,
नामी है, नामी न, नाम है, नाम भी न है।
है पुरुष-स्त्री उभय, नपुंसक लिंग नहीं है,
लक्ष्य विलक्षण, तल्लक्षण भी नहीं कहीं है ॥

—१२—

एक, द्वय, बहु वचन, साथ उस वचन-हीन पर,
वाच्य, वचन, वाचक विशेष वंचना-हीन पर।
होकर विश्वाकार, नित्य ही निराकार है,
है वह चित्र विचित्र, आप ही चित्रकार है।।

—१३—

घटित सकर्मक क्रिया द्विकर्मक कर्म-हीन पर,
सार्थ अकर्मक साथ हुई उस कर्म-लीन पर।
काल-कर्म से परे निरंतर वर्तमान है,
वही परोक्षाद्यतन तथानद्यतनवान है।।

—१४—

भूत नहीं, अनुभूत नहीं, सुप्रभूत नही है,
आत्मभूत, होकर भी जो संभूत नहीं है।
पंचभूत तद्भूत अतः वह महाभूत है,
है परोक्ष-अपरोक्ष, सदा सामान्य भूत है।।

—१५—

हेतु-हेतुमद् वही, वही संदिग्ध भूत है,
है वह पूर्णापूर्ण प्रसन्नासन्न भूत है।
क्या भवभावी वह भव-भावीकर विशाल है,
काल कहाँ, वह महाकाल का महाकाल है।।

—१६—

है वह कर्तृप्रधान, वही, कर्म-प्रधान है,
बुध विचार कर कहते, वह भाव-प्रधान है।
विश्व-विशेषण से विशेष्य-वर वह विशेष है,
सगुणोपेत महान गुण-रहित भी अशेष है।।

—१७—

है पुरुषोत्तम वही, अन्य होकर अनन्य है,
वक्ता, श्रोता, श्राव्य, तथा श्रुति वही धन्य है।
निश्चय-वाचक प्रणव अनिश्चय रूप-नाम है,
नाम-रूप से रहित सहित सौंदर्य-धाम है।।

—१८—

हे द्विगाव्ययीभाव, तत्पुरुष सार्थ सिद्ध है,
भाव-द्वंद-समास बहुव्रीहि प्रसिद्ध है।
व्यष्टि-समष्टि-स्वरूप जिसे लुक-अलुक जताते,
सत्य कर्मधारय ही वैय्याकरण बताते ।।

—१९—

है वह सहज कृदन्त सार्थ सप्रत्यय तद्धित,
जो व्याकरणानूप रूप, यह रचना तद्धित।
अविकारी, अव्यय, अरूप जो सर्वनाम है,
उस अनाम के नाम हमारा सत्प्रणाम है ।।

—२०—

है वह स्थायी भाव मात्र रस-पात्र तथा रस,
शान्त नितान्ताद्भुत-विलास श्रृंगार-सार बस।
हास-विकास समक्ष प्रकाश-स्वरूप प्रकट है,
करुणाम्बुधि-अनुरूप भयानक-रूप विकट है ।।

—२१—

सर्व शक्ति-मय वीर सृष्टि-संघर्ष रुद्र है,
सौम्यासौम्य विभत्स वही नव रस-समुद्र है।
कैसे एतादृकं रसालोऽहम् वदामि तम्,
शिरसा वारम्वारम हम् भक्त्या नमामि तम् ।।

—२२—

जो लालित्य, प्रसाद, ओज, माधुर्य-मूर्ति है,
कला-कांत कवि जो निर्गुण हो गुण-प्रपूर्ति है।
वृत्ति कोमला, उपनागरिका, परुषा न्यारी,
वृत्ति वशीकृत उस योगी में गई निहारी ।।

—२३—

आश्रय अपना आप आप आलम्बन अपना,
उद्दीपन, उद्दीपक भी उद्दीप्ति वह बना।
जो नित भावाभाव, स्वभाव-प्रभाव-रहित है,
क्या अनुभाव-विभाव-हाव फिर उसके हित है ।।

—२४—

निज-निजत्व संचरणशील होकर सचारी,
जो अपने में आप व्यभिचरित हो व्यभिचारी ।
काव्य वही, कवि वही, वही रस-कलाकार है,
उसको बारम्बार हमारा नमस्कार है ।।

—२५—

कौन, कहाँ, क्या, प्रश्न यही होते जिसके हित,
किन्तु यथेष्ट न उत्तर, सारे बुध हारे नित ।
है जिसके हित परिचयोक्ति 'नेतीति' अकेली,
रही विश्व को वह भी नित्त अबूझ पहेली ।।

—२६—

है बस जिसका व्याज विश्व यह अगणित इतना,
वृहन्मूलधन वह न कहो होवेगा कितना ।
तीन रुपयावत् दर से यह व्याज चढ रहा,
विविध प्रकार नितान्त विशद व्यापार बढ़ रहा ।।

—२७—

है आश्चर्य कि व्याज युगों से चलता जाता,
मूल वही का वही, न उसमें अन्तर आता ।।
चक्र-वृद्धि विधि-गति से चलता नव-भव-लेखा,
युग-युग खाता जाता रहे हिसाब अलेखा ।।

—२८—

जो अगणित अंकों का गुरु संकलन-रूप है,
घटित अंक सब, शेष एक, व्यवकलन-रूप है ।
लघुतम है जो तथा महत्तम एक वही है,
भिन्न अंश, हर, विधि तथैव वह एक सही है ।।

—२९—

एक वही जो विकसित होकर नव होता है,
एक पुनः रह शेष शून्य सब भव होता है ।
इस प्रकार जिसकी प्रधानता गणित बताता,
गुणी गुणक यह देख मुग्ध होकर रह जाता ।।

—३०—

अतिशयोक्ति, अत्युक्ति, जहाँ आल्पोक्ति ठहरती,
स्वभावोक्ति-सार्थता-लहर बस जहाँ लहरती।
केवल कुछ उल्लेख सार्थ करता कवि का श्रम,
उग अनन्त की अनन्तता में क्रम न यथाक्रम॥

—३१—

वह सदेह या है अदेह, संदेह जहाँ है,
है दृष्टान्त अदृष्ट दृष्टि खोजती कहाँ है।
भ्रान्तिमान रूपक-रचना रचता रख भ्रम है,
हुआ अपन्हव यदि उत्प्रेक्षा-कृत कवि-श्रम है॥

—३२—

कह सकते बस यही कि वह है एक अनन्वय,
कविर्मनीषी पारभू-रचना का गूढ़ान्वय।
अनुपमेय वह अतः सर्वथा उपमा हारी,
है बस जब उपमेय करे तब क्या बेचारी॥

—३३—

धर्म वही है एक, धर्म से परे वही है,
ओं३मिति वाचक वाच्य विवुध-बुध कहै वही है।
वही एक उपमेय और उपमान सही है,
यों उपमा है सही, और उपमा न सही है॥

—३४—

जिसकी नामावृत्ति न कविता में है दूषण,
वीप्सा-रूप अनूप वरन् वह होवे भूषण।
जो व्यतिरेक-विहीन कदापि न अधिक, हीन है,
क्या कवि कोई कहे उसे जो हाँ, नही न है॥

—३५—

निंदा-स्तुति के व्याज जगत जिसकी नित चर्चा,
करता किसी न किसी रूप में जिसकी अर्चा।
त्रेता-नामावृत्ति श्लिष्ट वीप्साभिराम है,
है विविधार्थ समर्थ उसे शतशः प्रणाम है॥

—३६—

हो सम, विषम, विरोध, विरोधाभास भासता,
नित्य असम्भव संभव लीलाद्भुत विकासता।
सविधि विविध विधि जिससे सब विधि विधि-विधान है,
निखिल निहित हो पिहित यदपि हित हतुमान है ॥

—३७—

जो परिकर-परिणाम-सार सूक्ष्माभिराम है,
भाविक कहते जिसे कि भाविक सार्थनाम है।
है विचित्र, अधिकाल्प, विषादन, सम, उदात्त है,
तद्‌गुण-मुद्रा, ललित, विशेष, समाधि आत्त है ॥

—३८—

जिस पर विविधाक्षेप, छेक, वक्रोक्ति साथ नित,
परिकर-बद्ध प्रतीप कथन करते मानी चित।
है जब वह बस एक, कहाँ अधिकाल्प, समासम,
लुप्तोपमा विचित्र विशेषक चित्र कृत-श्रम ॥

—३९—

जो कुछ प्रस्तुत सभी हुआ उससे ही प्रस्तुत,
किन्तु वही होकर प्रस्तुत भी है अप्रस्तुत।
एकावली-स्वरूप विश्व की कारण-माला,
है जिसमें रत्नावलि सी, वह शोभावाला ॥

—४०—

भव यह तद्‌गुण-भव परन्तु वस्तुतः अतद्‌गुण,
अनुगुण भी कह सके न बुध, जब वह है निर्गुण।
सर्व पदार्थ-समुच्चय है जिससे उन्मीलित,
पूर्वरूप, सामान्य हुआ जग उससे मीलित ॥

—४१—

हो यदि उसका स्मरण, तो न प्रतिषेध कहीं हो,
प्रत्यनीक-व्याघात, तिरस्कारापि नहीं हो।
संभावना न रंचक अर्थापत्ति की कहीं,
लेश, असंगति, यमक-दोष की भीति भी नहीं ॥

—४२—

साहस किसका, करे विकस्वरमयी अवज्ञा,
　　उसे, पालता जो विशेष उसकी सदनुज्ञा ।
जो प्रहर्षणाकार तथा उल्लास, सार है,
　　उसी गिरालकार सुकवि को नमस्कार है ॥

—४३—

अर्पित कोई करे सुमन यदि भक्ति-भाव से,
　　तो परिवृत सा जो देता फल चार चाव से ।
जिसकी सत्ता सत्य छोड़, मिथ्या जग-सत्ता,
　　मिथ्याध्यवसति-रूप, कल्पिता सत्य महत्ता ॥

—४४—

सत्य समझ पड़ता, कि तभी होती विभावना,
　　उस निर्गुण की, की जाये जब सगुण भावना ।
नानार्थान्तिरन्यास-युक्ति से उसे बताते,
　　काव्य-लिंग जग-रचना से वुध जिसे जताते ॥

—४५—

एक वही आद्यन्त विश्व का वस यथार्थ है,
　　इस विचार से सिहालोकन-रीति सार्थ है ।
उस कवीश की सुठि रचना में तुक ही तुक है,
　　है यति सानुप्रास पदान्त नहीं बेतुक है ॥

—४६—

प्राप्त पदार्थावृत्ति किन्तु तात्पर्यान्तिर से,
　　अनुप्रास-गति सहज अवतरण में अन्तर से ।
है मिलती पुनरुक्तवदाभासात्मक लीला,
　　जिसकी पहिले किन्तु वही अर्थान्तिर शीला ॥

—४७—

प्राप्त नही जब उदाहरण तव कोई कैसे,
　　कह सकना है, वह ऐसे यह है वस जैसे ।
धर्म वही, उपमेय स्वतः उसको प्रणाम है,
　　अनुपम उपमा वह, वाचक तत्सर्वनाम है ॥

—४८—

वाह्याभ्यंतर तथा परेह प्रदीपक दीपक,
विश्व-क्रियाओं का कर्ता, है कारक-दीपक।
केवल वाचक प्रकट आप उपमेय लुप्त है,
अनुपमान है, क्या उपमा, गुण प्रकट-गुप्त है ॥

—४९—

तुल्ययोगिता मिले कहाँ जब एक वही है,
कवि-निदर्शना भी उस पर जँचती न सही है।
आत्मा को तत्सदृश मान उपमान अकेला,
उपमेयोपम खेल जहाँ जा सकता खेला ॥

—५०—

एक समय में नभ, जल, थल में जिसकी सत्ता,
हो उसकी पर्याय-व्यक्त किस भाँति महत्ता।
है विभु जो, वह ध्येय, यही कहना यथार्थ है,
सगुण-व्याज से सेव्य सुपर्यायोक्ति सार्थ है ॥

—५१—

सब प्रकार आधार-रहित हो स्थिति जो रहता,
बुध विशेष आनंद-रूप ही उसको कहता।
शोभित जिससे विश्व, विश्व से शोभित जो है,
अन्योन्य-क्रम से माया, माया-पति मोहै ॥

—५२—

यों 'सर्व, खल्विदं ब्रह्म,' लोकोक्ति महा है,
छिपा छेक से घट घट मे रम राम रहा है।
विशेषोक्ति है सार्थ सर्वथा, जब सब कारण,
किन्तु तदिच्छा-बिना कार्य का रहे निवारण ॥

—५३—

जिस सुन्दर की सुन्दरता के बिना असुन्दर,
माया हो मोहिनी तथा नारद हों बन्दर।
विविध उक्तियों से कहते कवि कीर्तनकारी,
यश जिसका, वह हो 'रसाल' को मंगलकारी ॥

—५४—

सुमन-सुमन कह रहा कह रही डाली-डाली,
क्या चिन्ता जब रखवाली करते वनमाली।
इस प्रकार सब काव्य-शास्त्र जिस पर बलिहारी,
वह अभिलाषा पूर्ण सर्वथा करे हमारी॥

—५५—

प्रकृति पूर्ण प्रत्यक्ष रूप में चतुर युक्ति से,
व्यंजित करती जिसे विवृत-प्रौढ़ उक्ति से।
है जो आप प्रमेय, आप अपना प्रमाण है,
सादर उसे प्रणाम जो कि लोकैक प्राण है॥

—५६—

है जो केवल शब्द-रूप या भाव मात्र है,
जो है प्रेमी और प्रेम है, प्रेम-पात्र है।
भीतर भी है रमा, साथ ही विरमा बाहर,
जो श्री, श्री-पति, गिरा, गिरा-पति, उमा, उमा-वर॥

—५७—

जाग्रत है जो सुप्त साथ ही जो सुषुप्त है,
होकर भी जो गुप्त प्रकट, हो प्रकट गुप्त है।
जग-नाटक-नट वही नटी वह सूत्रधार है,
उस नायक-नायिका-रूप को नमस्कार है॥

—५८—

जो जग-कारण है कर्ता जो करण, कर्म है,
जो जग-धारक धर्म, और जो धर्म-मर्म है।
होकर जो चित् अचित चिदाचित है फिर दोनों,
जो प्रकाश है, अंधकार है, है फिर दोनों॥

—५९—

जो जड़-चेतन तथा चराचर, स्थावर-जंगम,
ज्ञान तथा अज्ञान, अविद्या-विद्या-संगम।
भक्त वही भगवान वही फिर वही भक्ति है।
अनरागी, अनुरागनीय है, समनुरक्ति है॥

—६०—

व्याप्य तथा व्यापक दोनों का ऐक्य जहाँ है,
कहे जिसे बुध, कहाँ न वह, फिर कहे कहाँ है ।
जो निज नाश-अशक्त और सब शक्तिमान है,
उसको प्रथम प्रणाम कि जो अणु है महान है ॥

—६१—

रवि, शशि, नभ, नक्षत्र विश्व के व्यापक दीपक,
दीपित जिसकी दिव्य दीप्ति से वह उद्दीपक ।
विश्व-विभावरि-बीच योग-निद्रा में सोता,
स्वप्न-सृष्टि देखता, दिखाता, जाग्रत होता ॥

—६२—

जो प्राणों का प्राण, विश्व-कल्याण-त्राण है,
जो प्रमाण से परे आप अपना प्रमाण है ।
कहना जिसको नास्ति, अस्ति है कहना उसको,
नमस्कार शतवार भक्ति से पहिले उसको ॥

—६३—

वर्णाकार-विहीन सुवर्णाकार-रूप जो,
शिव-डमरू कृत श्रुति-शशि सूत्राकार-रूप जो ।
गायनाद्य-स्वर गेय अवर्ण-अवर्ण स्वस्तिमय,
मत्साहित्य "रसाल" सुफल वर वर्ण जयति जय ॥

काव्योदय

प्रथम सर्ग

—१—

श्री नग-पति के शान्त एक एकान्त प्रान्त में,
शीतल, सुखद नितात रम्य विकसित वनान्त मे ।
आश्रम जैसा एक जहाँ रमणीक-स्थल था,
मुखरित करता जिसे जाह्नवी का कलकल था ।।

—२—

निखर रही थी ललित कलित केसर की क्यारी,
बिखर रही थी सुरभि सुरभि रह रह कर प्यारी ।
सुरभित, सरस समीर धीर गति से बहता था,
मंजु मधुर मधु-मृदु, मादकतामय रहता था ।।

—३—

कस्तूरिका कुरंग वृन्द के वृन्द विचरते,
सुरभित कर वन, सार्थ नाम निज करते चरते ।
रंग-विरंग कुरंग-कुरंगी-वृन्द विहरता,
कल कलोल करता मृग-शावक-कुल मन हरता ।।

—४—

कोकिल, कीर, कपोत, क्रौंच करके कल गायन,
कानन को करते निसर्ग का संगीतायन ।
मुदित मयूर-मयूरी-कुल का नृत्य रँगीला,
ललित लावा-तीतर का कौतुक-कृत्य रसीला ।।

—५—

करते कमला-कान्त-कीर्ति-कीर्तन नितान्त शुक,
कहते हों अक्लान्त हरि-कथा यथा शान्त शुक ।
कोक कही बेरोक कह रहे कोक-कारिका,
कही सरस स्वर से कहती श्रुति-सार सारिका ।।

—६—

द्राक्षा - वृतती - तती - समावृत कुंज-पुंज थे,
अलि-कुल-संकुल विपुल मंजु मालति निकुंज थे।
रंग-विरंगे रुचिर खिले-अधखिले सुमन थे,
तरु-तरु, लता-लता के मानो सरस सुमन थे॥

—७—

मदन-मित्र मंजुल सुबकुल-बंजुल थे विकचित,
विना मूल्य सुमनस के जिनपर जाते बिक चित,
पाटल-पुंजीकृत अलि-गुंजीकृत निकुंज में,
जाता था रम-विरम पवन केतकी-कुंज में॥

—८—

मंजुलता-पुर मंजु-लता-उर-माल मालती,
निशि में निशिकर साथ पुनीता प्रीति पालती।
सुरभि-संकुलित मुकुलित श्री मल्लिका लजीली,
अलियों में मिल करती अटखेलियाँ रसीली॥

—९—

मृदुल तान्त नव मृदु लतान्त-संकुलित प्रान्त था,
सुरभित सुषमा-समा- समाकुल सब वनान्त था।
कानन कल किशलयित दयित कमनीय कलित था,
प्रकृति-पलित, वर वास-वलित, लालित्य-ललित था॥

—१०—

विविध विपंची-वृन्द मुदितकल कूजन करता,
जीवन-सुख निज लूट प्रकृति का पूजन करता।
रंग विरंगे प्रिय शकुन्त-शावक फूलों में,
फूल-फूल झूलते लताओं के झूलों में॥

—११—

खंजन युग रह रह चलते थे चपल छबीले,
विपिन-विलोचन लोल सर्वथा यथा फबीले।
इसी व्याज से आज सभी दिशि से कल कानन,
देख रहा था मुदित शारदा का शुभ आनन॥

—१२—

तुषाराद्रि उत्तुग-श्रृंग पा दिन-मणि-ओभा,
समय समय पर प्रतिविम्वित हो दे यों शोभा।
देख जिसे लगता कहना बस यही उचित है,
माणिक, मरकत, पुष्पराग, हीरक-निर्मित है॥

—१३—

नीरज-रज को छोड़ न रज का लेश कहीं था,
कही न रज का लेश, नरज का लेश कही था।
मधु-पराग-रंजित प्रसून-पुंजित कानन था,
मधुप-राग-रंजित-गुंजित-कुंजित कानन था॥

—१४—

सुमन-सरस-प्रिय हो विमुग्ध मधुपावलि हारी,
सुमनस रस-प्रिय हो विमुग्ध मधु पा बलिहारीं।
सुमनसमोद विनोद निकुंजो में करते थे,
सुमनस मोद-विनोद निकुंजों में करते थे॥

—१५—

थीं वन में वे वन्य वनस्पतियाँ विभाकरी,
अमा-तमाकुल भी जिनसे बनती विभावरी।
चमचम जिनकी चारु चमक चमका करती थी,
जिनसे वन में दिव्य दाम दमका करती थी॥

—१५—

बस इससे ही वहाँ न तम का लेश कहीं था,
रजत-मही का रज-तम-हीन न देश कही था।
नित्य नव्यता साथ यही नैसर्गिक निधियाँ,
यहीं व्यक्त थीं प्रकृति-कला-कौशल की विधियाँ॥

—१७—

सौम्य सोम-वल्लरी हरी संजीवन-कारक,
थी, जिसके जा निकट दीखते दिन में तारक।
दिव्य एक से एक विचित्र-वनौषधि-बूटी,
थीं ऐसी, नव जीवन देती जिनकी घूँटी॥

—१८—

दम-दम दमका करती जो निज दिव्य दमक से,
आलोकित अटवी थी जिनकी चारु चमक से।
इस प्रकार वन बना हुआ था रसा-रसायन,
आदि रसायन-शास्त्रकार का सुखद रसायन ॥

—१९—

देव, यक्ष, गधर्व, तथा नर-किन्नर हर्षित,
थे वृन्दारक-वृन्द विहरते सुषमाकर्षित।
समय समय पर आकर सुख-सगीत सजाते,
साम-गान कर श्रवण-सुखद रीझते, रिझाते ॥

—२०—

संजीवन-कारिणी, मरण-हारिणी बूटियाँ,
बनती जिनसे जरा-जारिणी अमर घूँटियाँ।
तरुण-अरुण हों जिनसे युवा जरा से जर्जर,
अजर-अमर हो सार्थ नाम जिनसे सुरनिर्जर ॥

—२१—

विबुध-वधूटी-वृन्द जहाँ स्वच्छंद विहरता,
छवि-परिवर्तन-सम नर्तन करता, मन हरता।
भावित भव के भाग्यवान थे भूप विरमते,
नंदन वन निज छोड़ सांगना सुर आ रमते ॥

—२२—

श्रीजग-रत्नासना विमल-वसना ब्रह्माणी,
वीणा-वादन-विशारदा शारदा सुवाणी।
केवल मनोविनोद-हेतु थी जहाँ पधारीं,
प्रकृति देवि ने जहां निखिल निधियां निज वारीं ॥

—२३—

निकट यहाँ से रम्य रुचिर रज रजत-कूट था,
जो भुजंग-भूषण-नगजा का चित्रकूट था।
त्रिकूटेश ने किया स्वकर से जिसका तोलन,
शंभु-सुखद, मानिनी शिवा को भयदान्दोलन ॥

—२४—

एक अचल बस यही अचल शोभाभिराम है,
रीझ रहा जिसपर प्रकाम वह जो अकाम है।
गरल-ताप-चक्ष्वानल-तापित शिव-शरण्य यह,
धरा-धराधिप, धरा-धन्य जिससे अरण्य यह ॥

—२५—

सायं, प्रातः, दिवा, दिवाकर-दिव्य-प्रभा से,
विभावरी मे विशद विभाकर विमल विभा से ।
होते चारु विचित्र चित्र जिसके सुमनोरम,
चित्रकूट कहलाने में वस्तुतः यही क्षम ॥

—२६—

कलित कौमुदी, दिवस-दिवाकर-द्युति जो पाकर,
होता है वस्तुतः रुचिर-रोचक रजताकर ।
ऊषा की अरुणाभ कांचनी से कनकालय,
हो जाता ताम्राद्रि साध्य-अरुणाभा मे लय ॥

—२७—

एक समय इस वनोद्दश्य के रम्यस्थल मे ।
श्रीसुपमा थी जहां समायी जल मे थल में ।
क्रीड़ा-कौतुक-हेतु विवुध-वुध-वद्य शारदा,
विचर रही थी मुदित वीण-वादन-विशारदा ॥

—२८—

नाति निकट, कुछ दूर यहा से मानग-वर था,
विरस रसा का सहज रसाकुल मानस-सर था ।
सलिल-संकुलित निर्मल अतुलित मंजु मुकुर सा,
कूटाधिप पाषाण-वपुप का रसमय उर सा ॥

—२९—

चक्रवाक के मिथुन जहाँ मुदमय तरते थे,
जल-कुक्कुट के युग्म केलि-कौतुक करते थे ।
मथर गति से उपमराल का निकर निराला,
तरता, करता कल कलोल कौतूहलवाला ॥

—३०—

वारि-विहायस-वृन्द विविध विधि विहर रहा था,
देख भारती को श्रद्धा से सिहर रहा था।
तरल तरगो मे उमगयुत विविध तिमिगल,
उछल उछल तरते करते .मानो मुद-मंगल ॥

—३१—

तट पर जल में जहाँ सघन शैवाल-कुंज था,
वटु-सम ध्यानी धीर वकों का प्रयत पुंज था।
वह निज मीनाखेट सर्वथा भूल रहा था,
वीणा-वादिनि-छटा देख कर फूल रहा था ॥

—३२—

मंद मरुल्लहरी-लोलित जल लहराता था,
लहर लहर मे विंवित विधु छवि छहराता था।
कलित कुमुद-कुल-वायु-वीचि-वश कंपित हो हो,
ऊपर उठता झुक-झुक जल से झंपित हो हो ॥

—३३—

कुमुद सुमुदमय निज निकेत मे विधु को पाकर,
होते प्रेम-विभोर वंधु को अंक लगाकर।
कौतुक-प्रिय दोनो कर या कि कुलेल रहे है,
आंख मिचौनी, लुकाछिपी या खेल रहे हैं ॥

—३४—

श्यामाम्वर तारकित त्रियामा अमा की समा,
प्रतिविंवत होकर देती जिसको यों सुषमा।
आया हो हो मगन गगन सब इसी बहाने,
मानस-शीतल सुधा-सलिल में यथा नहाने ॥

—३५—

प्रमुदित वारि-विहार कर रहे राज-हंस थे,
वाणी-वाहन-वर विहंग-वंशावतंस थे।
देख वहाँ वे निजेश्वरी को विमुद विरमते,
चारु चाव से भक्ति-भाव से आकर नमते ॥

—३६—

प्रमुदित चंच्वानीत सलिल से पद पखारते,
रख विकसित सित कमल पद-कमल परमजुहारते।
यों करते कल हंस मुदित शारदा-सपर्या,
चुमकारती समोद गोद ले विदुषी-वर्या॥

—३७—

निज विहग-वाणी से करते वाणी-वंदन,
कहते 'हम खग करें आपका क्या अभिनंदन।
देवि ! कहाँ से यहाँ आप आईं क्यों कैसे,
मृदु शरण्य पद इस अरण्य में लाईं कैसे॥

—३८—

अहह ! खगाधम को न बात यह कुछ खलती है,
उसके रहते हुए देवि पैरों चलती है।
प्राप्त हुआ सौभाग्य उसे वाहन होने का,
नीर-क्षीर-विवेक-समवगाहन होने का॥

—३९—

विश्व-वंद्य वह बंधु हमारा है, इस नाते,
तदन्वयी होकर हम भी हैं पूजे जाते।
सुयश हमारा विश्व-व्याप्त होता है जैसे,
उससे हमको अयश प्राप्त होता है वैसे॥

—४०—

सशिशु विचरते देख खगों को चारु चाव से,
वाणी का उर उमड़ उठा वात्सल्य-भाव से।
सहज अपत्य-स्नेह-समन्वित उर का दीपक,
दीपित सहसा हुआ, देखकर यह उद्दीपक॥

—४१—

इसी व्याज से इसी समय से इस प्रकार बस,
भाव-रूप वात्सल्य लोक में हुआ प्रकट रस।
श्रीश-हृदय में रहा आज तक यह रस रुचिकर,
होता है रति भाव इसी में आकर शुचि कर॥

—४२—

शृंगारादिक सभी नव रसों से यह प्यारा,
अननुभवित यह रहा अभी तक सब से न्यारा।
लोक-पितामह होकर भी अबतक जिसका विधि,
पा न सके आस्वाद जानकर सब विधि रस-विधि ।।

-- ४३—

है न वस्तुतः जिसका सा सुख भापापर मे,
हरि जिस-हित अवतीर्ण हुए त्रेता-द्वापर मे ।
लव-कुश से, जानकी-रूप रख जिसे रमा ने,
गज-मुख-सेनानी से पाया जिसे उमा ने ।।

—४४—

सभी प्रेम-शृंगार-सार-फल-रस यह रस है,
भक्ति तथा अनुरक्ति यही आ होती बस है ।
प्राप्त रमा ने किया जिसे अनिरुद्ध-रूप मे,
हों लय शिव निर्वाण-रूप जिस रस। अनूप मे ।।

—४५—

लगी दीखने उन्हें मंजु मातृत्व-महत्ता,
ज्ञात हुई तद्विना निरर्थक अपनी सत्ता ।
सुत-स्नेह-सद्भाव विविध उठ चले सजीले,
मातृ-मया के वर विचार-व्यवहार रँगीले ।।

—४६—

वस वह कहने लगी आप ही आप अकेले,
"बिना पुत्र के विरस नारि-जीवन के मेले ।
सुत-स्नेह-सुख-सदृश सत्यतः सुख न कहीं है,
नारी-जीवन सफल नही, यदि तनय नही है ।।

—४७—

निश्चय ही वस पुत्र मया-माधुर्य-मूर्ति है,
यही वस्तुत. सुखद प्रेम की प्रयत पूर्ति है ।
निज निजता की सत्य पूर्णतः प्राप्ति यही है,
स्वात्मा की स्वाभाविक विभुता-व्याप्ति यही है ।।

— ४८—

दंपत्ति का द्वैतत्व-तत्व-एकत्व यहीं है,
माया का मायेशोपरि सुमहत्व यही है।
प्रकृति-मन-मुकुर पर पुरुष-प्रतिविम्ब यहीं है,
माया-ब्रह्म-विलास-विकासित विम्व यही है ॥

—४९—

नारि-लालसा-लतिका का सत्फल सुत ही है,
मातृ-मया-मय मानस का उत्पल सुत ही है।
माया में मायेश-व्याप्ति-अभिव्यक्ति यही है,
जिससे ममता सार्थ स्निग्ध वह व्यक्ति यही है ॥

—५०—

मातृ-ममत्व-महत्व निखरता है सुत ही से,
प्रणय-तत्व का सत्व बिखरता है सुत ही से।
माया में आभास पुत्र है परमात्मा का,
माया-जन्य स्वरूप अन्य सुत है आत्मा का ॥

—५१—

'आत्मा वै जायते सुतः,' श्रुति यों है कहती,
हो सुत जनकात्मैव प्रिया-ममता-सुख लहती ।,,
इसी व्याज से अन्य हुआ है जो अनन्य है,
अन्यानन्य-रहस्य-रूप रुचि-रुचिर धन्य है ॥

—५२—

स्वात्मज में ही नव्य निखरती माता-ममता,
सुत-स्नेह-सुख की न सृष्टि में सुन्दर समता।
कौतुक करता हुआ सुवन सविनोद निराला,
धन्य जननि! छविमयी करे जिसकी अंकाला ॥

—५३—

लगीं सोचने सरस्वती यों मन में अपने,
लगे दीखने मातृ-मया के सुन्दर सपने।
पुत्र-प्रेम के चित्र विचित्र लगे फिर फिरने,
लोचनाब्ज से मंजु मया-मधु-सीकर गिरने ॥

—५४—

जाग्रत उर में हुई मंजु मातृत्व-भावना,
जिसपर घटती नही समुत्प्रेक्षा-विभावना ।
द्रवित देवि-उर सरस स्रवित हो लगा सरसने,
मुख-मयंक से लगा प्रेम-पीयूष बरसने ।।

—५५—

होकर चिंतित इस प्रकार वे लगी सोचने,
सरसी-सरसीरुह-स्नेह-सीकर विमोचने ।
आतुर-कातर वहाँ तभी चिन्ता ने आकर,
वृद्धांजलि यों कहा सानुनय शीश झुकाकर ।।

—५६—

"धन्य हुई मै आज देवि ने स्मरण किया जो,
यों अपनाकर मुझे आदराभरण दिया जो ।
जो अपनाये मुझे कौन वह आर्य कहाँ है,
माने प्रीति-प्रतीति, शील-औदार्य कहाँ है ।।

—५७—

कोई मुझको कही विश्व में नही चाहता,
कभी चाव-सद्‌भाव-सहित हित से सराहता ।
होते हैं सब खिन्न जानकर मुझे समागत,
निन्दा ही से नित्य किया करते मम स्वागत ।।

—५८—

सभी चाहते नित्त दूर ही रहना मुझसे,
उचित उलहना भी न चाहते कहना मुझसे ।
कोई भी मुझसे न सृष्टि मे सुखी कही है,
महाभाग वह कौन कि मुझसे दुखी नही है ।।

—५९—

मानी जाती मै सदैव सब से परित्यक्ता,
होने देते नही रसिक भी निजानुरक्ता ।
यदि बहलाने चित्त कही मै निज जाती हूँ,
वहिष्कृता हो यथा-तथा व्यथिता आती हूँ ।।

—६०—

वुध-जन भी मम नामोपरि मसि-बिन्दु लगाकर,
दाहक कहते मुझे चिता से अधिक जगाकर।
किन्तु कहें आपही देवि ! त्वामहमभिनन्दे,
विश्व-विवुध-वुधं-वंद्ये ! ते चरणाब्जं वंदे॥

—६१—

देवि ! किन्तु यह यथार्थतः कुछ सार्थ नहीं है,
वुध-जनोक्ति सर्वांशतया चरितार्थ नहीं है।
उभय वर्ण ये चिता न मिलकर हो पाते है,
पृथक परस्पर वे नकार से हो जाते है॥

—६२—

पितामहाज्ञा-पालनार्थ मै यह सब सहती,
मार मार मन किसी भाँति मै जग में रहती।
प्रिय न जगत को मै, यद्यपि मुझको जग प्रिय है,
जीवन अपना मुझे इसी से अति अप्रिय है॥

—६३—

साहस धैर्य्योत्साह, विवेक, विचार-महत्ता,
रंच न रहती जहाँ मदीय प्रपंचक सत्ता।
खेद-खिन्नता मुझे इसी से प्रायः रहती,
होकर मुझसे ग्रस्त त्रस्त जगती दुख सहती॥

—६४—

संशय-शंका, शोक, निराशा, भय, दुख, पीड़ा,
सहचर हैं, सहचरी विपत विह्वलता-व्रीड़ा।
देवि ! न इससे मुझे प्राप्त संतुष्टि-शान्ति है,
अनुदिन मुझमें रमी क्लान्तिकारिणी क्रान्ति है॥

—६५—

ईदृक् जीवन से अपने मैं ऊब रही थी,
अपने ही में आप आप ही डूब रही थी।
रोकर निज मन दुखित विशेष मसोस रही थी,
कभी भाग्य को, कभी कर्म को, कोस रही थी॥

—६६—

थी सर्वथा अशान्त, शान्ति पाती न कहीं थी,
आशा की कुछ कही दीखती कान्ति नही थी।
दीखरहा था, मुझे सर्वतः बस तम ही तम,
चेतन जग भी सभी दीखता निर्मम-निर्मम ।।

—६७—

किंकर्तव्य-विमूढ़ बनी मै भकट रही थी,
सखी-सहेली निकट न कोई फटक रही थी।
एकाकी पथ-भ्रष्ट कष्ट सहती भ्रम-भटकी,
निज को भूली हुई कि ठुकराई घट घट की ।।

—६८—

थकी दृष्टि, देखते, सृष्टि में दिखी न आशा,
दीख पड़ी सर्वतः निराशा, निपट निराशा।
प्राप्त करूँ कुछ शान्ति, साथ निद्रा के रह कर,
किन्तु गई वह परे अनैसी-वैसी कह कर ।।

—६९—

मान-मनौती किये कही यदि आई भी वह,
दुःखद स्वप्नाशान्ति साथ निज लाई भी वह।
कहीं दिखाया नहीं सुगति का सुन्दर सपना,
मिला विश्व में कहीं नही कोई भी अपना ।।

—७०—

कलाकार-कृत रम्य प्रकृति-कृति में कुछ कलता,
मिली न कही कदापि, मिली तो मिली विकलता।
तभी देवि ने स्मरण किया मुझको कर अपना,
कृपया लिया उबार मुझे देकर कर अपना ।।

—७१—

ऐसा मैंने कहाँ कौन सा धर्म किया है,
स्मरण नहीं कब कहाँ कौन सत्कर्म किया है।
पुण्य मदीय प्रकाम कौन यह उदित हुआ है,
मुझपर जिससे यों त्वदीय मन मुदित हुआ है ।।

—७२—

सुकृत भला वह कौन कहाँ का, कब का मेरा,
होकर जिसने उदित भाग्य यों मेरा फेरा।
देवि! दया कर किया आपने मुझे कृतार्था,
दे निज चित में शरण चरण-भृत्या, को सार्था॥

—७३—

धन्य आज का दिवस, आज की घड़ी धन्य है,
धन्य आपकी दया, आप की माया धन्य है।
धन्य धन्य यह भाग्य, दया तव ऐसी धन्या,
देवि! धन्य तव चाव, भाव यह, मया अनन्या॥

—७४—

है प्रतीति, मैं हो, त्वदीय सत्प्रीति-प्रीता,
होगी मुझको प्राप्त आप्त-कृत सुगति पुनीता।
देवि! दयाकर कहें, मुझे क्या धर्म धार्य है,
कौन सुपथ अनुसार्य, कौन अब आर्य कार्य है॥

—७५—

अर्पित मेरी तुम्हें जग-जलधि-जीवन-तरनी,
करनी तुमको पार, हार बैठी मम करनी।
हो हित मम, हे हितैषिणी! कृपया वह वर दे,
अयि! विद्या, वर बुद्धि-शुद्धि-यश वरदे वरदे!

—७६—

कहाँ आप शारदा विबुध-बुध-वृन्द-वंदिता,
चिन्ता नाम्नी कहाँ निपट मैं निद्य-निदिता।
विद्या-बुद्धि-विवेक-जननि! क्या आप अनन्या,
निपट-अविद्या-तम-जन्या मैं कहां अधन्या॥

—७७—

यों अपना कर किया मुझे भूषित गौरव से,
दिया स्वर्ग-सुख दिव्य दूर करके रौरव से।
की है अपने आप आपने यह अनुकम्पा,
सघन-तमाकुल उर में उपजा दी शुचि शंपा॥

—७८—

तव पद-पद्म-पराग-प्रेम-पावन-पृष्टा हो,
देवि-दयाम्बु-सुवृष्टि-सिक्त होकर धृष्टा हो।
पाकर प्रयत प्रसाद दिव्य दुर्लभ यह ऐसा,
प्राप्त न अब तक हुआ किसी को, होगा जैसा॥

—७९—

करूं याचना, क्योंकि 'कोऽपि संतुष्ट सुखेन'
है लोकोक्ति यथार्थ "तृप्यते श्रेयसि केन"।
सुलभ न होगा फिर फिर दुर्लभ अवसर ऐसा,
प्राप्त कहाँ अक्षय पयमय फिर अब सर ऐसा॥

—८०—

देवी दात्री तथा दान-पात्री मुझ जैसी,
भला बनेगी बात बनाये फिर कब ऐसी।
ईदृक् शुभ संयोग योग-साधन से भी कब,
हो सकता है, अकस्मात् आप ही हुआ अब॥

—८१—

प्रस्तुत है प्रत्यक्ष अखिल औदार्य तुम्हारा,
है न याचना करना कार्य अनार्य हमारा ?
होता तव भंडार दान से दिन दिन दूना,
रहा तुम्हारा द्वार याचकों से कब सूना॥

—८२—

अत: यही याचना आपसे है अब मेरी,
लें कर विद्या-कला सुता सी मुझको चेरी।
भक्ति-मुक्ति की बन पाऊँ मैं सखी-सहेली,
सुलझ सके मुझसे भी जग-यातना-पहेली॥

—८३—

फिर प्रवेश पा सकूँ मंजु मुनि-मन-मानस में,
स्नान कर सकूँ साधु-संत-संगति सुख-रस में।
श्री, धी, ह्री, की बनूँ सहचरी ऐसी प्यारी,
मेरे द्वारा इनकी छवि जा सके निहारी॥



—८४—

साध्य सभी हों सिद्धि साधना मेरी करके,
हों सब साधक सफल राधना मेरी करके।
देवि ! रहे तव साथ विमल वर मेरी काया,
हो मम माया-रूप जहाँ पर हो जग-माया ।।

—८५—

रख कर सूक्ष्म-स्वरूप अनूपम मेरी आत्मा,
रहे जहाँ परमात्मा-चिन्तन करे महात्मा।
देवि ! रहे तव पदानुरक्ता मम कल काया,
रहे अविद्या-माया में केवल मम छाया ।।

—८६—

निजाराध्यमय मुझमे सुख संयोगी-योगी,
पावे भगवत्सौख्य भक्ति के भावुक-भोगी।
विद्यानद अमंद पा सकें मुझसे पंडित,
सज्जन-सुधी, विवेक-ज्ञान-विज्ञान-विमंडित" ।।

—८७—

सुन कर ऐसी सौम्य चारु चिंता की वाणी,
स्नेह-स्रवित उर दया-द्रवित हो बोली वाणी।
"अयि चिन्ते ! क्यों इस प्रकार तू चिंतित होकर,
चित्रित कर स्वचरित्र-चित्र कहती रो रो कर" ।।

—८८—

चिन्ता बोली पुनः, "देवि ! अब मै न दुखी हूँ,
पाकर दर्श-स्पर्श आपका शान्त सुखी हूँ।
"अलमिति कथनेनेति"-बीच मे बोली देवी,
"संत-सुधी-योगिनः भविष्यंति च ते सेवी ।।

—८९—

अयि ! चिन्ते ! वरमिदं प्रार्थितं संददामि ते,
मय्यनुरक्तचास्मि प्रीता पथ्यं वदामि ते।
तवेप्सितं याचितं यथा सर्वं तथास्तु ते,
वृथा कथय मा करुण-कथां विगत-व्यथास्तु ते" ।।

—६०—

सुनकर ऐसी गिरा, गिरा देवी की रम्या,
चिन्ता बोली "देवि ! दासिका है यह क्षम्या ।
मेरे कारण वहुत आपको कष्ट हुआ है,
समय आपका मूल्यवान् यह नष्ट हुआ है ।।

—६१—

तवानुकम्पा-कृता हुई मैं अब कृतकार्या,
संप्रवुद्ध, संशुद्ध, पुनीतात्मा वुध-धार्या ।
ऋणी आपकी अतः शारदे ! सदा रहूँगी,
तव पद-पद्म-पराग-राग-रंजिता रहूँगी ।।

—६२—

दें आज्ञा, अब चलूं, देवि ! विद्या-विशारदे !।
जयति सुधी-धां-ध्येये, गेये, जयति शारदे!" ।
यों कह चिन्ता चली गई शतशः प्रणाम कर,
देवि-दया-चिन्तन से चिन्ता सार्थ नाम कर ।।

—६३—

ज्यों ही चिन्ता गई, आ गई संध्या त्यों ही,
थी बैठी ही अभी भारती ज्यों की त्यों ही ।
श्रद्धा, भक्ति, पदानुरक्ति रख कृतप्रणामा,
वोली प्रीति-पुनीति-नीति से संध्या श्यामा ।।

—६४—

"जयति विवुध-वुध-वंद्य वल्लकी-पुस्तक-हस्ते ।
जयति भगवती जयति देवि भारती नमस्ते ।
विधि-विधान-वश मुझे अधिक अब समय नहीं है,
यह न विचारें आप कि मेरे हृदय नहीं हैं ।।

—६५—

देवि ! दयामयि ! अतः सर्वथा हूँ मैं क्षम्या,
आती है वह यहाँ यामिनी रानी रम्या ।
दशगत कर से मुदित प्रतीची-वाल-भाल पर,
चढ़ा रहे हैं वह सुहाग-सिंदूर प्रभाकर ।।

—९६—

गाती मंगल-गान इसी से यह विहगाली,
बिखर रही है पश्चिमाद्रि पर जिसकी लाली ।
लेकर पद्म-पराग राग से रम्य रसीला,
उड़ा रहा सर्वतः समीरण सुखी सजीला ॥

—९७—

वह देखो, उद्वाह-यज्ञ होता समाप्त है,
जिसका श्यामल धूम हो रहा व्योम-व्याप्त है ।
तदुपलक्ष मे अभी व्योम में दीपक-राजी,
दिगंगनाओं के द्वारा जायेगी साजी ॥

—९८—

नीराजना-सुरीति अभी रखनी है मुझको,
न्योछावर की नीति-प्रीति लखनी है मुझको ।
दें इससे आदेश देवि ! मैं सत्वर जाऊँ,
अम्ब ! न और विलम्ब अधिक मैं यहाँ लगाऊँ ॥

—९९—

रुक सकती मैं और अधिक अब यहाँ न देवी !
आगमनातुर खंड़परशु-मौलि-श्री-सेवी ।
आतुरता भी दिखा रही है राका रजनी,
तारक-रदना, स्मित वदना विधु-कान्ता सजनी" ॥

—१००—

पाकर वाण्यादेश गयी संध्या कल्याणी,
कर निज वाणी को पुनीत कह "जय-जय वाणी" ।
गायत्री का ध्यान तभी वाणी को आया,
वहाँ उन्होंने सद्यः कल्याणी को पाया ॥

—१०१—

वाणी ने सस्नेह कहा-"स्वागत, अयि ! आर्ये !,
वेद-विदांवर-वंद्ये ! स्वागत, धर्मोद्-धार्ये "।
गायत्री ने कहाः-"जयति, जय, जय ब्रह्माणी,
"क्यों न कहें यों कल्याणी वाणी की वाणी ॥॥

—१०२—

प्राची में बस इसी समय निशि-नाथ चन्द्रमा,
मुदित उदित हो लगे विश्व को देने सुषमा ।
देख इंदु को, कहा गिरा ने, "धरा धन्य है,,
ऐसा लोकालोक पौत्र जिसका अनन्य है ।।

—१०३—

पाकर जो देवत्व दिव्य सद्भक्ति-भाव से,
अवनि अम्ब की परिक्रमा करता सुचाव से ।
मातोर्वी-सेवन किया जीवन -व्रत जिसने,
किया उपस्थित उदाहरण उसका सा किसने ।।

—१०४—

शीतल होती अवनि अम्ब की जिससे छाती,
लव-लहरी लख जिसे उरोदधि में लहराती ।
मातामही मही-सुश्रूषा दश शत कर से,
जो करता, जब वह तापित होती दिनकर से ।।

—१०५—

पा विभव-श्री रम्य रसा को करता अर्पण,
मानु मेदिनी-छायामय जिसका उर-दर्पण ।
धन्य जननि वह, जिसका सुत हो सौम्य सुधाकर,
धूल-धूसरित जननी को जो दे वसुधाकर ।।

—१०६—

ऐसा देख चरित्र चारु सुपवित्र अदूषण,
किया ईश ने जिसे शिरोमणि मंजुल भूषण ।
ऐसे शीतल-शान्त हुए जिसको अपनाकर,
प्रकट किये तन्नाम-मूर्ध्नि निज नाम बनाकर ।।

—१०७—

मातृ-भक्ति जिसकी ऐसी अप्रतिम जानकर,
रमा-रमण ने जिसे रमा-प्रियबंधु मानकर ।
जिसे मान प्रतिरूप स्वमन का, यों अपनाया,
सार्थ "चन्द्रमा मनसो जातः" ख्यात कराया ।।

—१०८—

प्रिय पयोधि-पय-सी सित जिसकी कलित-कांति से,
प्रमुदित यों हरि हुए सोम की सौम्य शान्ति से ।।
गीतलता-हित इसे न यदि शंकर अपनाते,
निश्चय ही हरि हृदय-हार-मणि इसे बनाते ।।

—१०९—

निज प्रति ऐसी देख स्वानुजा-नायक-ममता,
की प्रकटित हरि के प्रति जिसने भक्त्यनुपमता ।
कहा सानुनय यों कि-"हरे ! श्रृंगार-सार हे !
हे सुख-सुषमागार !, प्रेम-रस-रसाकार हे,, ।।

—११०—

पाकर प्रभु का प्रेम भाग्य में निज सराहता,
केवल यह वरदान आप से और चाहता ।
तव नामानुग चन्द्र नाम मेरा नित होवे,
स्वीकृत यह प्रभु करं परम मेरा हित होवे ।।

—१११—

जैसा है हो चुका आपका मेरा नाता,
दास्य भाव को उचित मानकर वह अपनाता ।
शीर्षभूषण मुझे करे प्रभु यह अयोग्य है,
श्रीमच्चरणाम्बुज पराग-रज मुझे भोग्य है ।।

—११२—

दे मौल्यासन मुझे रुद्र ने उचित किया है,
तव पदापगा को शिर पर यदि वास दिया है" ।
सुनकर ऐसे वचन चन्द्र के चारु चाव से,
बोले श्री वैकुंठ-नाथ यों प्रेम-भाव से ।।

—११३—

"चन्द्र ! प्रसन्नोऽस्म्यहम् निपीयामृतं त्वदीयम्,
त्वं में परम-प्रियस्त्वमेव च मनः मदीयम् ।
प्रीत्या ते प्रीतोऽस्मि करिष्यामि च ते सूक्तम्,
त्रेता-द्वापरयोश्चन्द्रः तव में संयुक्तम् ।।११३।।

—११४—

त्रेतायामहमस्मि रामचन्द्रः विख्यातः,
तथा द्वापरे कृष्णचन्द्ररिति लोके ख्यातः ।,,
संतुष्टो भव, चन्द्र ! ममोक्तं भवति नान्यथा,
मुदित कहा शशि ने कि-"कृतज्ञोऽस्मीति सर्वथा"।।

—११५—

देवि ! कहो क्या सुत सितार्क सा कहीं अन्य है,
ऐसे सुत से माता का मातृत्व धन्य है।
क्या ऐसे मातृत्व-सौख्य की है कुछ समता,
प्राप्त कहाँ माता-मानस की सी मृदु ममता ।।

—११६—

देखो, एक रहस्य और इसमें है देवी ?
राम-कृष्ण का चंद्र तभी रहता है सेवी।
रमा-रूप-बोधक सीता-राधा-पद जब तक,
पूर्व न आते साथ चंद्र पद रहता तब तक ।।

—११७—

रमेतरार्थक हो श्री पद जब पूर्व राजता,
राम-कृष्ण के साथ चन्द्र पद तब विराजता।
ऐसा चारु चरित्र चंद्र का महिमा-मंडित,
समझ-बूझकर, मुग्ध हुआ करते कुछ पंडित ।।

—११८—

है प्रिय कितने इसे रमा-पति हरि शुक्लाम्बर,
है यह रहता जहाँ वहाँ रखता शुक्लाम्बर।
कृष्ण-कृष्ण पक्षानुराग-हित चारु चंद्रमा,
श्याम-रंग-रंजित कर सकला-सकला सुषमा ।।

—११९—

शुक्लाम्बर श्रीराम-रूप-रस-कला विखारो,
कर सकलार्पण कृष्ण-पक्ष-लीनता निखारो।
श्री-वर षोडश-कला-विकास-प्रकाश दिखावो,
कृष्ण-पक्ष में सकलात्मार्पण-मर्म सिखावो ।।

—१२०—

ालोत्पल-श्री श्रीहरि की रखते निज उर में,
रहो चमकते पातालोर्वी, नभ, सुर-पुर में।
कृष्ण-पक्ष में आत्म-समर्पण-मर्म सिखाते,
सत्व-सितात्मा का विकास-क्रम-धर्म दिखाते ॥

—१२१—

सुनकर ऐसी गिरा-गिरा गायत्री देवी,
बोली यों--"सुत-सदृश विश्व यह तव पद-सेवी ॥
वाणी बोली, ,,सर्जनि ! न तुम सी जग में अन्या,
चतुर्वेद पूज्याम्ब प्रशस्ता तुम हो धन्या ॥

—१२२—

गायत्री ने कहा--"देवि ! क्या मेरी सत्ता,
जो कुछ हूँ मैं वह तवैव है महा महत्ता।
मैं तो हूँ उस बुद्धि-शुद्धि की चिरोपासिका,
जो रहती है सदा तुम्हारी दीन दासिका ॥

—१२३—

कहा स्मितानन से कि "देवि ! भगवती भारती,
चन्द्रोदय-मिस प्राची तव कर रही आरती।
तारक जो यह यत्र-तत्र नभ में निखरे हैं,
नीराजना-प्रसून वस्तुतः वे बिखरे हैं ॥

—१२४—

सजनि ! रजनि के साथ रजनि-नायक छवि छाजे,
विशद व्योम पर चढ़ते बढ़ते हुए विराजे,।
दें अब आज्ञा आप, चलू मैं, फिर आऊँगी,
अवसर पाऊँगी, कि बुलाई जब जाऊँगी ॥

—१२५—

दया-भाव यह बना रहे अनुदिन ऐसा ही,
शिरोधार्य आदेश जहाँ जब हो जैसा ही"।
यों कह सत्वर चली गई गायत्री देवी,
समाराधनालीन जहाँ थे उसके सेवी ॥

—१२६—

निशा-कौमुदी-साथ निखिल नक्षत्र-नाथ तब,
रजत-पयासिंचित करते, जग-तम हरते सब।
विश्व-वंदनीया वाणी का पाकर दर्शन,
मुदित किया कर-निकर बढ़ाकर चरण-स्पर्शन ॥

—१२७—

प्रमुदित बोली गिरा-"शुभाशिष यही हमारी,
"चन्द्र ! चमकती रहे सुयश-चंद्रिका तुम्हारी।"
शुक्लाम्बर में बढ़े चढ़े तव सदभिरामता,
कृष्ण-पक्ष में तव विलीनतामयी श्यामता ॥

—१२८—

वैष्णव-रूप अनूप राम-कृष्णानुरक्ति है,
भूरि-भाग्य तुम, तुममे भव-भगवान-भक्ति है।
हरि-हर-प्रीति-प्रतीति-समन्वय-रूप धन्य तुम,
मदन-मित्र हो, मदन-कदन-प्रिय हो अनन्य तुम ॥

—१२९—

निखिल निविड़ तम तमस्तोम में अभय विरमते,
विश्व-त्रियाभा-श्यामा-रस मे रुचि रख रमते।
डूब तमिस्र-तमोराशि में ऊपर आते,
सत्व-समुज्वल कला-कान्ति-कौमुदी खिलाते ॥

—१३०—

ग्रम इससे ही प्रथम सत्व-सित कला तुम्हारी,
जाती है अति भक्ति-भाव के साथ निहारी।
वंदनीय, अभिनंदनीय तव वह चरित्र है,
यदालोक से लोक-समालोकित पवित्र है ॥

—१३१—

नमस्कार फिर किया कौमुदी ने सुभाव से,
अंक लगा सुमयंक-प्रिया को चारु चाव से।
कहा गिरा ने समुद-"कुमुद-प्रिय-प्रिये ! तुम्हारा,
अचल रहे सौभाग्य, शुभाशिष यही हमारा" ॥

—१३२—

राका ने भी कहा देवि-"! भारती ! नमस्ते,
कहा गिरा ने "विमले ! विमल भवतु यशस्ते ।"
सुनकर यों आशीष चन्द्रिका चारु खिल गई,
राका-रजनी-नाथ साथ सुव्योमाखिलमयी ।।१३२।।

—१३३—

प्रकृति-प्रान्त सब शान्त हुआ शुक्लाभा-धवलित,
किया व्योमगत तमस्तोम को विधु ने कवलित ।
चारों ओर चकोर चाव से लगे चहकने,
समुद कुमुद हो कलित लगे मृदु मधुर महकने ।।१३३।।

—१३४—

देख निशा भीगती भारती ने निज मन मे,
सोचा यों मैं भी पहुँचूँ अब आत्म भवन में ।
बस तदैव मन मुदित मंजु मुक्ताशन-सेवी,
आया वाहन हंस, गई ब्रह्माणी देवी ।।१३४।।

× × ×

दो०--आकर देखा भवन में, विश्व-विधायक-वर्य विधि,
लेखा लेकर विश्व का, मिला रहे थे सविधि विधि ।।

द्वितीय सर्ग

—१—

विगत-विभावरि हुई, ब्रह्म-वेला शुचि आई,
निखिल प्रकृति में भव्य-नव्य सुषमा-श्री छाई।
जाग्रति की मंजुल तरंग हो गई तरंगित,
अखिल चराचर में उमंग नव हुई उमंगित ॥

—२—

चेतनता की चारु चमक चपला सी चमकी,
निखिल निसर्गानन पर दिव्य द्युति सी दमकी।
निखर चली रुचि-रम्य गुलाबी ललित लालिमा,
बिखर चली सर्वतः उषा की सुखद शालिमा ॥

—३—

प्रतिबिम्बित प्राची-छबि से हो छजी प्रतीची,
दक्षिण दिग् भी समालोकिता, सजी उदीची।
झंकृत अपने आप हो उठी वाणी-वीणा,
गायन करने लगी स्वतः रागिनी-प्रवीणा ॥

—४—

मुकुलित सरसिज-सुरभि-सुरभि मृदुलानिल शीतल,
सुर-वन से आ बहता, करता रम्य मही-तल।
पा यह प्रातःभातकी पवन प्राणित हो प्राणी,
पावन करने लगे हरि-स्तुति से निज वाणी ॥

—५—

विस्तृत विश्वाकाश हो उठा फिर अनुनादित,
द्विगुणित जिससे हुआ ककुभ-कुल कुल प्रतिनादित।
मंजु मरुद्गति-क्वणित कच्छपी-कृत कल रव से,
हुए रागमय जाग्रत त्रिभुवन चेतन नव से ॥

—६—

स्फुटित हुए नीरवता में लयभूत सप्त-स्वर,
व्याप्त हुआ यों शब्द-ब्रह्म-गुण से भव नश्वर ।
अगणित चेतन कंठ हुए शब्दायमान सब,
निद्रालय-लय चेतनता-बोधायमान अब ॥

—७—

पुरुष-सूक्त स्वस्त्ययन लगे गाने शुभ सत्वर,
साम-पुरस्सर वेद मिला वीणा-स्वर मे स्वर ।
तथा नाथ ही स्तोत्र मिलाकर ताल तथा लय,
बोले यों-'जय गिरे ! जयति जलजात-जात जय' ॥

—८—

ताम्रचूड तब सुन यह शिव-सूचक स्वर बोला,
प्रकट स्वर-त्रय-मर्म विश्व में उसने खोला ।
ब्राह्म-यज्ञ-हित अग्नि-मंत्र सस्वर-श्रुति गाने,
अरुणशिखा वैश्वानर को ऋषि लगे जगाने ॥

—९—

नाग-युग्म अनेक एक ही साथ एकायक,
लगे बोलने सौम्य-स्वर से यथा सहायक ।
विविध विहायस-वृन्द तदैव समाकर्षित हो,
कीर्तन करने लगा जगत्पति का हर्षित हो ॥

—१०—

शिथिल सृष्टि में नई स्फूर्ति की लहरी लहरी,
कलित ललित छवि उषा-मूर्ति की गहरी छहरी ।
बिम्बारुण-रदना विहसित सी वदनानन्या,
मुदित उदित बालार्क अंक ले उठीसुधन्या ॥

—११—

विशद विश्व-वाण्याभिनंदिता कल कल्याणी,
उठी विबुध-बुध-वृन्द-वंदिता वर ब्रह्माणी ।
जग-वाणी जग उठी जग उठी ज्यों ही वाणी,
विमल गिरा से लगे गिरा-गुण गाने प्राणी ॥

—१२—

"ओ३म् हरिस्तत्सत्' जगैक-हेतवे नमः ओ३म्,
चिदानन्द-रूपाय, स्वर्ग-सेतवे नमः ओ३म् ।
जय जय जगदाधार जग-जनक-जनक जयति जय,
जय विश्वम्भर विश्व-रूप सर्ग-स्थिति-लय जय" ।।

—१३—

यों प्रातस्मरणीय का स्मरण कर गीर्देवी,
गई जहाँ नालीक-जन्म थे श्री-हरि-सेवी ।
बोली—"विश्व-विधायकाय देवाय नमस्ते,
समुज्वलं प्रकरोतु मे मन. शुभ्रयशस्ते ।।

—१४—

प्राप्यानुग्रहमस्मि लोक-पूज्याहम् धन्या,
विस्तृत चेतन-विश्व-रसज्ञासना अनन्या ।
वदेऽहम् त्वा, देव ! जयति प्रभुरिति" कह वाणी,
वद्धांजलि हो रही, कही विधि ने यह वाणी ।।

—१५—

"अस्मिन् समये शुभे ! शुभागमनं ते रम्यम्,
प्रसन्नोऽस्मि ते प्रिये ! प्राप्य दर्शनमौपम्यम् !
कुशलमस्तु शुभमस्तु, भवतु भद्रं प्रियवादिनि
वुद्धि-विलासिनि ! मंजुल-हासिनि ! वीणा-वादिनि" ।।

—१६—

यों वोली भारती नमित-मुख मृदु मुसकाते,
"लोक-पितामह ! महा-महिम ! मयि महादया ते" ।
कृता कृतार्था देव ! त्वया सर्वथाऽहम् सुप्रभाते,
मे मंगलं करोतु मुखाम्बुज-नव्य प्रभा ते" ।

—१७—

वागैश्वर्येश्वरी गिरा ने यों फिर देखा,
देख रहे हैं चतुर्वदन निज अग-जग-लेखा ।
श्री, धी, सुख-दुख तथा जयाजय का कर वितरण,
देख रहे थे भव-भव-विभव-पराभव प्रकरण ।।

—१८—

जंगम-जड़ की बना वासरिक प्रगति-व्यवस्था,
प्रकृति-यंत्र की कर स्वतंत्र संचलनावस्था।
स्नेहिन कर सब तंत्र शक्ति फिर संचारित कर,
काल-चक्र की प्रगति नियति से निर्धारित कर॥

—१९—

निजाप्रतिम विज्ञानालय मे विधि विज्ञानी,
श्रीश-कथित नियम-प्रयोग लखते विधि ज्ञानी।
ताप-प्रकाशाकाश, वायु, विद्युत-प्रक्रिया,
होती देखी वहाँ उन्होने सविधि सब क्रिया॥

—२०—

निज असार रचना में भी सारता देख कर,
आसद् विश्व में सत्स्वरूप का रूप पेख कर।
अनि अभाव में भाव-स्वभाव-प्रभाव सजीला,
मुसकाते विधि तीन-पाँच-विधि की लख लीला॥

—२१—

सारवान का लख असार जग-बीच विरमना,
निर्गुण मे गुण का, गुण में निर्गुण का रमना।
काल-चक्र का आवर्तन फिर प्रत्यावर्तन,
तदनुकूल जड़-जंगम का परिवर्तन-नर्तन॥

—२२—

देख सोचते, यत्कृपया मैं यह रच पाया,
वह माया-पति धन्य, धन्य उसकी यह माया!
विश्व-विरचना-नियम अहो! अत्यंत अनूठा,
जो कि सत्य का सत्य और झूठा का झूठा॥

—२३—

है यह कुछ भी नहीं किंतु लगता सब कुछ है,
यह कल्पित जग-जाल, दृष्टि-भ्रम है, यदि कुछ है।
यों विचारते कमलासन लख कौतुक चोखा,
मृदु मुसकाते हुए कल्पना-कृत्य अनोखा॥

—२४—

अद्भुत रस के रूप अनूप तथाधिष्ठाता,
अद्भुत रचना देख स्वयं विस्मित है धाता ।
मुग्ध हुई शारदा प्राप्त कर यह विधि-दर्शन,
किया उन्होंने बढ़ सभवित प्रभु-चरण-स्पर्शन ॥

—२५—

यों बोली कर जोड़, "प्रभो ! त्वामहं नमामि ।
श्रोतुमहम् ते समुपदेशममृतमिच्छामि" ॥
सुनकर यह भारती-भारती भरी भाव से,
बोले तामरसासन सुस्मित-वदन चाव से ॥

—२६—

"स्वस्ति शारदे ! शुभे ! स्वागतम् ते कल्याणी,
तवागमनमस्मिन् समये सुखदं ब्रह्माणी" ।
इस पर बोली सरस्वती, "प्रभु देख रहे क्या,
विज्ञानालय में निज आप परेख रहे क्या" ॥

—२७—

यह सुनकर वागीश विहँस मृदु मधुर गिरा से,
किंचित रुक पय-सिंचित बोले वचन गिरा से ।
"देख रहा हूँ देवि ! दृष्ट जो दृष्ट नही है,
है अदृष्ट-कृत, वह अदृष्ट इसमें न कही है ॥

—२८—

दीख रहा जो यह जग वह कौतुकागार है,
सार-सहित संसार वस्तुतः यह असार है ।
कौतुक है, कौतुकी न इसमें किन्तु कही है,
लीला है, जिसमें लील-पति स्वतः नही है ॥

—२९—

दीख रहा यह यथा वस्तुतः यह न तथा है,
इस रहस्य की अति रहस्यमय देवि ! कथा है ।
कारण इसका वही, नहीं कारण है जिसका,
केवल एक निमित्त मात्र कारण मै इसका ॥

—३०—

अनाधार जो स्वत उसी पर यह आधारित,
सत्य-धर्म से विश्व सत्यत: है सब धारित।
यह जग प्रेम-प्रदीप स्नेहमय रस से द्योतित,
है जो ज्ञान-ज्योति आप अपने से ज्योतित ॥

—३१—

यह आश्चर्यागार वस्तुत जाग्रत सपना,
केवल ऊहापोह मात्र मन का है जपना।
यद्यपि इसकी देवि ! सत्यतः सत्य न सत्ता,
तदपि सत्य-सत्ता सी इसकी मान्य महत्ता ॥

—३२—

व्यापक, अच्युत, सत्य सर्वथा है वह इसमें,
सत्यासत्य-अभेद सार्थ होता है जिसमें।
इसी हेतु यह देवि ! सत्य होकर असत्य है,
यह विरोध-द्वैतत्व-तत्व-सार्थता सत्य है ॥

—३३—

एक सच्चिदानन्द-ज्योति नित जगती जग-जग।
जगमग जिसकी जगामगी से रहता जग-मग।
तेजोरूप अनूप ब्रह्ममय विश्व यदपि है,
रज-तम ही मय रजत-महीमय यही तदपि है ॥

—३४—

यों कह सकते देवि ! जगत यह रंग-मंच है,
पंच महाभूतो का ही यह बस प्रपंच है।
माया है नायिका पुरुष वह इसमें नायक,
प्रकृति नटी, मैं सूत्रधार सा बना विधायक ॥

—३५—

अभिनयकारक पात्र यहाँ सब चेतन प्राणी,
बोल रही तुम गिरासना हो सब में वाणी।
यथा समय होता दृश्याम्बर-पट-परिवर्तन,
होता है नटराज-राज का तांडव नर्तन ॥

—३६—

एक महानात्मांश-रूप आत्मायें अगणित,
श्रुति-वसु लक्षाकार रूप रख रख कर नित नित।
स्नेह-सिझी जिसके सनेह से, उसे सिझाती,
रीझ रही जिसपर, रस से हैं उसे रिझातीं॥

—३७—

युग युग पर दृश्यान्तर होता पट-परिवर्तन,
होता है इस नाट्य-भवन मे नित नव नर्तन।
नाटक यह योंही नितांत है होता रहता,
देखा करता प्रभु जगता रह सोता रहता॥

—३८—

सुर-नर-किन्नर सभी स्वकौतुक-कृत्य रसीला,
दिखलाते, देखते दिव्य श्री-भगवल्लीला।
दर्शक जो हैं पात्र वहीं है, यह विचित्र है,
ज्ञात न उनको समभिनेय वह क्या चरित्र है॥

—३९—

है अथवा जग चल-चित्रालय चारु निराला,
निविड़ तिमिर सर्वत्र, केन्द्र में कलित उजाला।
समय चक्र-चालित चित्रों की उसमे छाया,
फेंक वेग से, भ्रम-कौतुक करती नित माया॥

—४०—

दैवी दिव्य प्रकाश प्रकाशित इसे बनाता,
शाश्वत एक अदृष्ट-केन्द्र से है जो आता।
केन्द्र-गताम्बर पट होता आलोकित जिस से,
होती दृष्ट अदृष्ट चित्र-चल-छाया इससे॥

—४१—

जगत कुतूहल-पूर्ण कौतुकालय विचित्र है,
चित्रित चल चित्रों से जिसमे वह चरित्र ह।
कह कह जिसको वेद विविध विधि उर मे छकते,
विश्व-विलोचन देख देख देखते न थकते॥

—४२—

विश्व वस्तुत एक महा माया का मेला,
माया-पति ही यहाँ एक है पुरुष अकेला।
क्रय-विक्रय इसमे होता है धर्म-कर्म का,
पाप-पुण्य, सत्कर्म तथा दुष्कर्म-मर्म का॥

—४३—

सौदा होता नित्य नेह का यहाँ सर्वथा,
संतत नेही-नेह-पात्र की यहाँ है कथा।
मोहर मे सब काम, काम मे रत सब जन है,
बस सुवर्ण की चाह-चाहना-पूरित मन है॥

—४४—

एक रुपया मन का भाव, प्रधान यहाँ है,
दे छटाँक मन लेने का सुविधान यहाँ है।
है जितने जन यहाँ, काम मे सभी निरत है,
है समस्त मदमस्त, तथा सब अस्तव्यस्त है॥

—४५—

साथ लगे रहते दलाल दो चतुर आँख के,
गाहक निज चाहते मन-धनी, अंध-आँख के।
यहाँ नित्य हो, चित्त-वित्त की चोरी चोखी,
आँखो के देखते हुए नित नीति अनोखी॥

—४६—

बस मन के ही भाव से यहाँ लेना-देना,
बातो का व्यापार, न कुछ है लेना-देना।
सफल विश्व-व्यापार, लगा जिसमे परार्थ है,
असफल निश्चय वही, कि जिसमे लगा स्वार्थ है॥

—४७—

नानाकार-प्रकार के सुमृत्तिका-खिलौने,
जग-प्रेक्षागृह मे सज्जित है सुघर सलोने।
है प्रतिविम्बित जिनमे अखिलेश्वर परमात्मा,
होता यों प्रतिभात कि इनमें है पृथगात्मा॥